Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 6
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

नाट्यशास्त्र में छन्दों की प्रासंगिकता

प्रियंका मौर्या
शोधच्छात्रा (संस्कृत विभाग), गया प्रसाद स्मारक राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बारी, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश।

Article Info

Publication Issue :
November-December-2023
Volume 6, Issue 6

Page Number : 112-118

Article History
Received : 02 Dec 2023
Published : 21 Dec 2023

शोध आलेख सार:- संस्कृत साहित्य के इतिहास में छन्दों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन काल से ही मानव मन की भावों की अभिव्यक्ति के लिए छन्दों का उपाय रूप में प्रयोग होता रहा है । मानव अपने सुख-दु:खात्मक सभी भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्राचीन समय से ही छन्दों का सहारा लेकर उसे संक्षिप्त रूप से संगीतात्मकता, लयात्मकता, सरसता आदि का आधान करते हुए वह अपने भावों को दूसरे को संप्रेषित करता आ रहा है । जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण संसार के प्रथम ग्रन्थ से उपमित वेदों में स्पष्टत: देखा जा सकता है । प्राचीन समय की अध्ययन अध्यापन की शैली मौखिक होती थी, जिस कारण ऋषि - मुनियों ने ज्ञान-विज्ञान आदि से सम्बंधित विषयों का ज्ञान अपने शिष्यों को मौखिक रूप से कराते थे । ये तभी संभव है जब वह छन्दबद्धता रूप में पद्य स्वरूप हो। छन्द के महत्त्व को देखते हुए इसकी गणना छ: वेदांगों में की जाती है। पाणिनीयशिक्षा में छन्द को वेद का चरण बताया गया है-**"छन्द: पादौ तु वेदस्य"।** जिस प्रकार चरणों के बिना मनुष्य चल फिर नही सकता उसी प्रकार छन्द के बिना वेद गतिशील नही हो सकता है। काव्य बंधों में सरसता, गीतात्मकता, लयात्मकता, आह्लादकता आदि के द्वारा ही काव्य व नाट्य को गति प्रदान की जाती रही है। ये तत्व छन्दों बद्ध रूप में होने से संभव होता है जिसकी अनिवार्यता को देखते हुए आचार्य भरत के द्वारा नाट्य शास्त्र में नाट्य व काव्य की दृष्टि से छन्दों का विधान किया गया है।

मुख्य शब्द:- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, छन्द, छन्द के भेद-प्रभेद, प्रस्तार, गण, सम्पत्, विराम, पाद, दैवत, अक्षर, वृत्त।

षड् वेदांगों में छन्द शब्द का उल्लेख होने से इसका महत्त्व स्वत: स्पष्ट है कि जिस प्रकार षड् वेदांगों के अंतर्गत आने वाले शिक्षा, कल्प, निरुक्त,ज्योतिष एवं व्याकरण वेदों के अर्थ ज्ञान के लिए उसके उपकारक होते है वैसे ही छन्द भी वेदों के अर्थ ज्ञान में सहायक होते हैं जिसका स्पष्टत: उल्लेख आचार्य भरत के द्वारा किया गया है - **"एवं नानार्थसंयुक्तै:------ छंदोवृत्ताभिधानवत्।"**[1] इस प्रकार छन्द केवल अर्थो ज्ञान ही सहायक नहीं होते अपितु उसे सतत गतिमान भी बनाते हैं।यही कारण है कि इसकी कल्पना वेदपुरुष के पादरूप में की गयी है।

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

छन्द के महत्त्व को देखते हुए छन्द शब्द को विभिन्न ग्रंथों में विविध रूप से प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया है। जहाँ इसकी व्याख्या प्राय: वेद मन्त्रों को दृष्टि में रखकर की गयी है–**"छादयन्ति ह वा एनं पापात् कर्मण:"**[2] अर्थात् पापकर्म से जो मन्त्रों को निवारित करते हैं, वे छन्द हैं। यास्क ने छन्द शब्द की व्युत्पत्ति **छद्** धातु से मानी है, जिसका अर्थ है– आवृत करना अर्थात् छन्द वेदों के आवरण हैं। जिससे शब्दों को विशिष्ट आवरण में बाधे जाये वह छन्द है। वेदों में छन्दों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके विना वैदिक मन्त्रों का उच्चारण और अर्थों का ज्ञान नहीं किया जा सकता है। इसकी महत्ता का प्रतिपादन बृहद्देवता में इस प्रकार हुआ है–

अविदित्वा ऋषिञ्छन्दो दैवतं योगमेव च।

योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु स:॥[3]

अर्थात् जो ऋषि, छन्द और देवता को एवं इनके विनियोग को जाने विना वेद मन्त्रों का अध्ययन करता है या जाप करता है, वह पापी होता है।

इससे स्पष्ट होता है कि वेद छन्द बद्ध रूप में है। जिससे इनमें आह्लादकता का भी होना स्वाभाविक है क्योंकि प्राय: वेद शब्द से यही आशय लिया जाता रहा है। वेद शब्द की व्युत्पत्ति "विन्दि प्राप्तौ'' धातु से हुई है जो विदन्ति अनेन स्वर्गादि लोकान् इति वेद:। इस प्रकार वेद शब्द से स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति बतलाई गयी है और वेद छन्द बाहुल्य होने से इनकी प्राप्ति में छंदों की आह्लादकता भी मानी जा सकती है इसके अतिरिक्त "वेदानाम् सामवेदो अस्मि''[4] इस उक्ति के द्वारा भी छंदों की आह्लादक होने का प्रमाण माना गया है क्योंकि सामवेद में साम शब्द गान का वाचक है जिसमे गायन स्वरों की प्रधानता होने से आह्लादकता का होना भी प्रासंगिक है। इसी तरह आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में धातु पाठ के अंतर्गत छन्द शब्द की व्युत्पत्ति चदि आह्लादने धातु से असुन् प्रत्यय लगने से बताई गयी है[5]। जिसका अर्थ होता है – आह्लादित करना अथवा आनंदित करना।

इस प्रकार छंदों के आह्लादजनक होने के कारण काव्य व नाट्य भी रसिकजनों के लिए आह्लादकारी होता है। यह आह्लादकता तभी संभव है जब काव्य व नाट्य में छंदों के अंतर्गत आने वाले यति,गति,मात्रा,प्रवाह,वर्ण,तुकांत आदि का पूर्णत: पालन होता है इसी आह्लाद स्वरूप आनंदमयता के लिए भरत ने भी काव्य व नाट्य में छंदों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए छन्दों का वर्णन करना नाट्यशास्त्र में प्रासंगिक माना है। इस प्रकार छन्दों की महत्ता स्वत: प्रमाणित हो जाती है। छन्दशास्त्र पर सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ आचार्य पिंगलमुनि का छन्द:सूत्र है, जिसमें वैदिक एवं लौकिक छन्दों का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त बाद के ग्रन्थों में भी छन्द विषयक वर्णन प्राप्त होते हैं।

छन्द विषयक चर्चा नाट्यशास्त्र में भी देखने को मिलती है। आचार्य भरतमुनि नाट्यशास्त्र के चौदहवें एवं पन्द्रहवें अध्यायों में छन्द–विधान पर प्रकाश डालते हुये, चौदहवें अध्याय में छन्द के लक्षण, वैदिक छन्दों के भेद–प्रभेद, गण, सम्पत्, विराम, वर्ण,स्वर, वृत्त इत्यादि का उल्लेख किये हैं एवं पन्द्रहवें अध्याय में तीन प्रकार के वृत्तों का वर्णन हुआ है। जिनका वर्णन इस प्रकार है–

छन्द का लक्षण:- काव्यबन्धों के निर्माण में छन्दों की प्रासंगिकता अनिवार्य है। जिसका लक्षण भरतमुनि के अनुसार इस प्रकार है–

एवं नानार्थसंयुक्तै: पदैर्वर्णविभूषिते।

चतुर्भिस्तु भवेद्युक्तं छन्दोवृत्ताभिधानवत्॥[6]

अर्थात् नाना प्रकार के अर्थों से युक्त तथा वर्णों से विभूषित चार पादों से युक्त छन्द होता है, उसे वृत्त भी कहते हैं।

यहाँ पर वर्णों से तात्पर्य है- लघु(I) एवं गुरु(S) वर्ण जो अनेक प्रकार के अलंकारों से अलंकृत चार पादों से युक्त पद्य होता है और वे पद्य पादों से रचित होते हैं उसे छन्द कहते हैं। पादों की संख्या के आधार पर आचार्य भरतमुनि छब्बीस प्रकार के छन्दों की गणना करते हैं और उसे सम, अर्धसम एवं विषम भेदों में विभाजित करते हैं और वे सम, अर्धसम आदि वृत्तों से युक्त छन्द को शब्द का शरीर मानते हैं-

नानावृत्तिविनिष्पन्ना शब्दस्यैषा तनूस्मृता॥[7]

इसके अतिरिक्त वे छन्द व शब्द को एक दूसरे पर आश्रित बताते हुये उन दोनों के संयोग को नाट्य का उद्योतक कहते हैं-

छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दश्शब्दवर्जितम्।

तस्मात्तूभयसंयोगो नाट्यस्योताद्योतक स्मृतः॥[8]

अर्थात् छन्दों से रहित कोई शब्द नही होता और न शब्दों से रहित कोई छन्द होता है। अतः दोनों का संयोग नाट्य का उद्योतक माना गया है।

छन्द के भेदः- छन्दशास्त्र में छंदों के भेद करने का मुख्यतः दो आधार माना गया है- पहला छन्द के प्रत्येक पाद में स्थित अक्षर गणना के अनुसार तथा दूसरा छन्द के प्रत्येक पाद में स्थित मात्रा गणना के अनुसार । इस प्रकार छन्द के अक्षर व मात्रा के आधार पर अनेक भेद माने गए हैं । वेदों में प्रायः अक्षर गणना के अनुसार छंदों का विभाजन देखने को मिलता है जो एकाक्षरात्मक पाद से लेकर 26 अक्षरात्मक पाद वाले हैं । जिसका उल्लेख आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के 14वें या 15वें अध्याय में किये हैं। जो एकाक्षरात्मक पाद वाले उक्ता से लेकर उत्कृति पर्यंत हैं जिसका वर्णन क्रमशः इस प्रकार हैं - 1.एक अक्षर वाले उक्ता 2.दो अक्षर वाले अत्युक्ता 3.मध्या 4.प्रतिष्ठा 5.सुप्रतिष्ठा 6.गायत्री 7.उष्णिक् 8.अनुष्टुप् 9.बृहती 10.पंक्ति 11.त्रिष्टुप् 12.जगती 13. अतिजगती 14.शक्वरी 15.अतिशक्वरी 16.अष्टि 17.अत्यष्टि 18.धृति 19.अतिधृति 20.कृति 21.प्रकृति 22.आकृति 23.विकृति 24.संकृति 25.अभिकृति 26.छब्बीस अक्षरों वाली उत्कृति। इससे अधिक अक्षरों के पाद वाले छन्द को मालावृत्त कहते हैं। **अतोऽधिकाक्षरं छन्दो मालावृत्तं तदिष्यते॥**[9]

उपर्युक्त छन्दों का विभाजन आचार्य भरतमुनि प्रस्तार के योग से मानते हैं-

छन्दसां तु तथा ह्येते भेदाः प्रस्तारयोगतः।

असंख्येप्रमाणानि वृत्तान्याहुरतो बुधाः॥[10]

अर्थात् छन्दों के इतने भेद प्रस्तार के योग से होते हैं। इसलिए विद्वद्गण वृत्तो की संख्या असंख्य मानते हैं।

प्रस्तार का विस्तृत वर्णन पिङ्गलाचार्य प्रणीत काव्यमाला की मृतसंजीवनी व्याख्या में भट्ट हलायुध ने (8/20) से लेकर (8/23) तक इसकी व्याख्या की है। उसका अभिप्राय इस प्रकार है- किस छन्द के कितने भेद सम्भव हैं, इस बात का ज्ञान जिस प्रणाली से होता है, उसे प्रस्तार कहा जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र की टीका अभिनवभारती में भी प्रस्तार का उल्लेख करते हुये कहते हैं-

प्रकीर्य सर्व गुरु तत्र पूर्वगुरोरधो लं परिपूर्य तत्वम्।

स्यात्पूर्वपूर्व गुरुणेति यावत्सर्वत्र लं प्रस्तरणे तदेव॥[11]

अर्थात् प्रथम सभी वर्ण गुरु हो, फिर आदि अक्षर गुरु और उसके नीचे लघु हो, इस प्रकार पूर्व, पूर्व को गुरु से पूर्ण करें और तब तक करें जब तक सर्व लघु न आ जाय।

जैसे- एकाक्षर प्रस्तार - द्वयाक्षर प्रस्तार

ऽऽऽ

। इसके दो भेद हुए। ।ऽ

।। इसके चार भेद हुए। ऽ।

छन्दों के प्रभेदः- भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में सभी छब्बीस प्रकार के छन्दों के प्रभेदों की गणना न कर गायत्री से लेकर उत्कृति तक छन्दों के प्रभेदों की संख्या बताते हैं। नाट्यशास्त्र में छन्दों के प्रभेदों की यह संख्या 64 प्रकार के गायत्री से लेकर उत्कृति तक छः करोड़ इकहत्तर लाख आठ हजार आठ सौ चौसठ तक पहुँच जाती है और सभी छन्दों के प्रभेदों का योग करने पर यह संख्या कुल तेरह करोड़ बयालीस लाख सत्रह हजार सात सौ छब्बीस तक है।

आचार्य भरत छन्दों के समस्त प्रभेदों का आधार प्रस्तार को स्वीकार करते हुए सभी विद्वानों से इसी तरह छन्दों की योजना करने का निर्देश भी करते हैं–

उक्ताद्युत्कृतिपर्यन्तवृत्तसंख्यां विचक्षणः।

एतेन च विकल्पेन वृत्तेष्वेतेषु निर्दिशेत्॥[12]

गणः- नाट्यशास्त्र में गण से तात्पर्य है– आठ त्रिकों से जो ब्रह्मा से उत्पन्न हैं। जिनके द्वारा छन्दों के प्रमाण (संख्या) में लघुता लायी जाय, उसे गण कहते हैं–

एते ह्यष्टौ त्रिकाः प्राज्ञैर्विज्ञेया ब्रह्मसम्भवाः।

लाघवार्थं पुनरमी छन्दोज्ञानमवेक्ष्य च॥[13]

आचार्य भरतमुनि सभी छन्दों को इन त्रिकों द्वारा संगठित करने का निर्देश करते हैं। इन त्रिकों के संज्ञा, स्थान एवं अक्षरों को भी निरूपित करते हैं। त्रिकों की संज्ञा से तात्पर्य है– आठ गणों के नाम से, जैसे– भगण, मगण, जगण, सगण, रगण, तगण, यगण एवं नगण। त्रिकों के स्थान से तात्पर्य है– प्रत्येक गण में उपस्थित लघु व गुरु के क्रम से, जैसे– मगण(ऽऽऽ), नगण(।।।) इत्यादि।त्रिक के अक्षर से तात्पर्य गुरु व लघु से है जिसका वर्णन नाट्यशास्त्र में इस प्रकार हुआ है–

त्रीण्यक्षराणि विज्ञेयस्त्रिकोंऽशः परिकल्पितः।

गुरुलघ्वक्षरकृतः सर्ववृत्तेषु नित्यशः॥[14]

अर्थात् प्रथम तीन अक्षरों को समझना चाहिये जिनसे सभी छन्दों में नियमतः गुरु एवं लघु अक्षरों के द्वारा त्रिक अंश की परिकल्पना की गयी है। इन्हीं त्रिकों से भरतमुनि सम, अर्धसम एवं विषम जातियों की भी उत्पत्ति मानते हैं- **"एभिर्विनिर्गताश्चान्या जातयोऽथ समादयः।"**[15]

सम्पत्:- छन्दोविधान में सम्पत् से तात्पर्य वर्णों की संख्या के कम व अधिक न होने से है, जिसका वर्णन नाट्यशास्त्र में इस प्रकार है–

नैवातिरिक्तं हीनं वा यत्र संपद्यते क्रमः।
विधाने च्छन्दसामेष संपदित्यभिसंज्ञितः॥[16]

आचार्य अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र की व्याख्या करते हुये अभिनवभारती में सम्पत् का तात्पर्य स्वराट्, विराट्, भूरिक् एवं निचृत् से मानते हैं और उसका होना वेदों में स्वीकार करते हैं, काव्य में नहीं– **सम्पदितिस्वराट् विराट् भूरिक्निचृत् इत्येषां श्रुतावेव संभवो न काव्य इति तात्पर्यम्।**[17]

विरामः- नाट्यशास्त्र में विराम से तात्पर्य प्रत्येक पाद के अन्त में अर्थों की समाप्ति से है– **यथार्थस्य समाप्तिःस्यात् स विराम इति स्मृतः।**[18] जिसकी व्याख्या अभिनवगुप्त अभिनवभारती में इस प्रकार करते हैं– **अर्थस्यावान्तररूपस्य समाप्तिर्लक्षणतो यतिः।**[19] अर्थात् अवान्तर रूप अर्थ की लक्षणतः जहाँ समाप्ति हो, उसे यति (विराम) कहते हैं।

पादः- पाद शब्द की व्युत्पत्ति पद् धातु से होती है। जिसका तात्पर्य छन्द के चतुर्थ भाग से है। जिसका वर्णन नाट्यशास्त्र में इस प्रकार है– **"पादश्च पद्यतेर्धातोश्चतुर्भाग इति स्मृतः।"**[20]

दैवतः- आचार्य भरत ने न केवल छन्दों के भेद-प्रभेद तथा अंग-उपांग का ही वर्णन नाट्यशास्त्र में किया अपितु छन्दों के अधिष्ठातृ देवताओं का भी उल्लेख किया है–**"अन्यादिदैवतं प्रोक्तं"**[21] अग्नि आदि इनके देवता हैं। यहाँ पर अग्नि आदि देवताओं से तात्पर्य है–अग्नि, सविता, सोम, बृहस्पति, मित्रावरुण, इन्द्र एवं विश्वादेव से।

अक्षरः- नाट्यशास्त्र में अक्षर से तात्पर्य है– ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत स्वरों से जिन्हें भरतमुनि ने अक्षर कहा है–**"ह्रस्वं दीर्घं प्लुतञ्चैव त्रिविधञ्चात्क्षरं स्मृत्।"**[22]

वृत्तः- वृत्त तीन प्रकार के होते हैं– सम, अर्धसम एवं विषम।

"वृत्तमर्धसमं चैव समं विषममेव च।"[23]

भरत ने इन वृत्तों के तीन गण दिव्य, दिव्येतर तथा दिव्यमानुष का भी उल्लेख नाट्यशास्त्र में करते हैं–

सर्वेषामेव वृत्तानां तज्ज्ञैर्ज्ञेया गणास्त्रः।
दिव्यो दिव्येतरश्चैव दिव्यमानुष एव च॥[24]

इसके अतिरिक्त वे इन गणों के आधार पर छन्दों को सात-सात वर्गों में विभाजित करते हैं, जैसे– दिव्यगण के अन्तर्गत गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् एवं जगती। इसी प्रकार अन्य छन्दों का विभाजन अन्य गणों के आधार पर किया गया है।

प्रस्तार के भेदः- प्रस्तार के भेद के आधार पर छन्दों के भी दो प्रकार के भेद होते हैं, जिसका उल्लेख नाट्यशास्त्र में इस प्रकार किया गया है–1. अक्षरनिर्दिष्ट (वर्णिक छन्द) प्रस्तार तथा 2. मात्रोक्त (मात्रिक छन्द) प्रस्तार। इनमें जो गुरू व लघु वर्ण है वह वर्णिक है, एवं मिश्रित-भूत होने पर मात्रिक।

प्रस्तारोऽक्षरनिर्दिष्टो मात्रोक्तश्च तथैव हि।
द्विकौ ग्लाविति वर्णोक्तौ मिश्रौ चेत्यपि मात्रिकौ॥[25]

आचार्य भरत ने सम, अर्धसम व विषम भेद से वृत्तों का विभाजन नाट्यशास्त्र के पन्द्रहवें अध्याय में किये हैं।

समवृत्तः- नाट्यशास्त्र में समवृत्त से तात्पर्य है पादों के लक्षण करने पर सभी पादों में होने वाली समानता से **"पादे सिध्दे समं।"**[26] इसी तरह का मत अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में व्यक्त किये हैं- **"पादचतुष्टये तुल्यलक्षणं समं।"**[27] अर्थात् चारों पादों में समान लक्षण (अक्षर) होने पर सम छन्द है। भरतमुनि ने इसके 54 भेदों का उदाहरण सहित उल्लेख नाट्यशास्त्र में दिये हैं।

अर्धसमवृत्तः- अर्धसमवृत्त का लक्षण नाट्यशास्त्र में दो प्रकार से किया गया है -1. **द्वौ समौ द्वौ च विषमौ वृत्तेऽर्धविषमे तथा।**

जहाँ पर दो पाद (प्रथम व तृतीय) सम हो तथा दो पाद विषम हो उसे 'अर्धसम' वृत्त कहते हैं।

2. **ह्रस्वाद्यमथ दीर्घाद्यं दीर्घं ह्रस्वमथापि वा।**

युग्मौजविषमैः पादैर्वृत्तमर्धसमं भवेत्।।

अर्थात् जहाँ पर आदि पाद लघु (छोटा) या दीर्घ (बड़ा) हो और दूसरा पाद दीर्घ या ह्रस्व हो तो युग्म, ओज और विषम पादों से निर्मित वृत्त 'अर्धसम' कहलाता है।

विषमवृत्तः- भरतमुनि के अनुसार विषम वृत्त वहाँ होता है, जहाँ पर अनेक वृत्तों से समुद्भूत पाद विषम हों तथा पाद के योग से रचे गये हों वहाँ विषम वृत्त होता है-

यत्र पादास्तु विषमा नानावृत्तसमुद्भवाः।

ग्रथिताः पादयोगेन तद् वृत्तं विषमं स्मृतम्।।

अथवा

सर्वपादैश्च विषमैवृत्त विषममुच्यते।।

जहाँ पर चारों पाद विषम हो उसे विषमवृत्त कहते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :- प्रस्तुत शास्त्र में वर्णित छन्दों के ज्ञान से काव्य व नाट्य का निर्माण करने वाले काव्याचार्यों व नाट्याचार्यों को सुगमता होगी जिससे वे सरस,आह्लादकारी काव्यों व नाट्यों का निर्माण कर सकते है जो कवि व पाठक दोनों के लिए उपादेय सिद्ध होगा ।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि छन्दशास्त्र का उद्भव आज का नहीं है इसका उद्भव तो जब प्राचीन समय में लेखन सामग्री का अभाव था तभी से स्पष्टतः देखा जा सकता है क्योंकि इसका स्पष्टतः प्रमाण वेद हैं । वेद अपौरुषेय है । जिसका ज्ञान ऋषियों को पद्यमय रूप में हुआ । ऋषि-मुनि भी इसका ज्ञान इसी रूप में अपने शिष्यों को मौखिक परंपरा से कराते थे । जो गेय व आह्लादकारी होने से चिर समय तक याद रहता था । नाट्यशास्त्रकार भरत ने भी इसके महत्व की प्रासंगिकता को देखते हुए नाट्यशास्त्र के 14वें,15वें एवं 32वें अध्याय में काव्य व नाट्य की दृष्टि से छंदों के भेद-प्रभेद, लक्षण, प्रस्तार आदि का विस्तृत विवरण देते हुए दिखलाई पड़ते हैं, जो काव्य व नाट्य का निर्माण करने वाले कर्ता एवं पाठक व श्रोता की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. पाणिनीय शिक्षा, वाचस्पति डा0 दिव्यचेतनब्रम्हचारी, (चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय) ।
2. छन्दोऽलंकारसौरभम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र पृ.5
3. ऋक्सूक्त संग्रहः, डा0 हरिदत्तशास्त्री व कृष्णकुमार (भूमिका, पृ0 27)।
4. श्रीमद्भगवद्गीता ।
5. पाणिनीय धातु पाठ , भ्वादिगण-70
6. नाट्यशास्त्र 14/44, पृ 236 (पारसनाथ द्विवेदी कृत)।
7. वहीं (14/54)।
8. अभिनवभारती, भाग-2, रविशंकर नागर के0 एल0 जोशी, (परिमल संस्कृत ग्रन्थमाला संख्या 4)।
9. नाट्यशास्त्र, (14/55)।
10. वहीं, (14/80)।
11. वहीं, (14/88)।
12. वहीं, (14/85)।
13. वहीं, (14/89)।
14. वहीं, (14/99)।
15. अभिनवभारती, भाग-2।
16. नाट्यशास्त्र,(14/100)।
17. अभिनवभारती, भाग-2
18. नाट्यशास्त्र, (14/100)।
19. वहीं, (14/101)।
20. वहीं, (14/103)।
21. वहीं, (14/106)।
22. वहीं, (14/108)।
23. वहीं, (14/113)।
24. वहीं, (15/128)।
25. अभिनवभारती, भाग-2।
26. नाट्यशास्त्र, (15/126-127)।
27. नाट्यशास्त्र, (15/125-126)।